ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 144-147**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

परिवार में महिलाओं की स्थिति

डॉ० खुशबू कुमारी
एम०ए०, पी–एच०डी० – समाजशास्त्र, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार) भारत

Received-28.04.2025, Revised-06.05.2025, Accepted-12.05.2025 **E-mail : itskhusbusinha567@gmail.com**

सारांशः ***भारतीय समाज के मनीषियों ने भौतिक जीवन एवं आध्यात्मिक जीवन की अनेक संस्थाओं का वास्तविक तथा कल्पनात्मक विवेचन किया है। भारतीय धर्म, दर्शन, आर्थिक जीवन, वर्ण तथा आश्रम ऐसे ही अनेक कितने तत्त्वों का वर्णन भारतीय सामाजिक इतिहास में विद्यमान है परंतु, इन सभी में सबसे सुलभ, शुभकारी एवं महत्त्वपूर्ण संस्था भारतीय परिवार है। परिवार ने लोगों को जीवन का मार्गदर्शन दिया है। परिवार ने मनुष्य के जीवन को सुख एवं शांति से सींचा है और यह अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि कहा जाये हिन्दू परिवार हमारे परिवर्तनशील इतिहास में स्थायी ध्रुव बिन्दु है। श्रद्धा, यज्ञ, ज्ञान, तप, प्रेम, सत्य, व्रत नियम ये सभी महान गुण मिलकर परिवार की रक्षा करते हैं और उसे प्रत्येक पीढ़ी में नये शक्ति एवं रस से उसे आगे बढ़ाते हैं।***

कुंजीभूत शब्द– भारतीय समाज, भौतिक जीवन, आध्यात्मिक जीवन, आर्थिक जीवन, भारतीय सामाजिक इतिहास, शुभकारी

स्त्री एवं पुरुष दो परिवार के मूल हैं। दोनों के बीच में ही जीवन की धारा प्रभावित होती है। वैदिक साहित्य में पुरुष एवं स्त्री में सम्मिलन की उपमा पृथ्वी और आकाश से दी गयी है। जिस प्रकार घोंघा (शुक्ति) के दो दलों के बीच मोती की स्थिति होती है वैसे ही स्त्री और पुरुष के बीच में संतति है। आकाश के बादल, वर्षा के द्वारा पृथ्वी को पौधों एवं वनस्पतियों को उत्पन्न देने लायक बनाते है, उसी प्रकार स्त्री एवं पुरुष, पति–पत्नी के रूप में सृजन कर प्रजाति की निरंतरता को बनाये रखते हैं। विवाह संस्कार इसे मान्यता प्रदान करता है। परिवार में रूत्री वृत्त के व्यास जैसी है और पुरुष उसकी परिधि है। छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है कि जिस प्रकार वृत्त के व्यास को तिगुना करके परिधि बनती है। उसी प्रकार स्त्री के जीवन से मुक्त होकर पुरुष का जीवन बनता है और यही पति–पत्नी या गृहस्थ जीवन का समाज– संग्रहित है।

गृहस्थ की व्याख्या हिन्दू धर्म की उस सूक्ष्म दृष्टि को प्रकट करती है, जिसके द्वारा स्थूल एवं नश्वर के स्वरूप प्रकृति के नृत्य एवं शुभ के प्रति मिलाने का प्रयत्न किया गया था। धर्मशास्त्र के क्षेत्र में मनु ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए यह स्वीकार किया कि 'जो पुरुष है, वही स्त्री' इस मत का उद्देश्य यह बताना है कि गृहस्थ के जीवन में जितना पति का अधिकार है उतना पत्नी का भी है।

हिन्दू परिवार के संबंध में धर्म शब्द पर भी विचार करना है। धर्म से तात्पर्य उन सत्यात्मक नियमों से है, जो व्यक्ति के जीवन और समाज को धारण करते है। यह धर्म कर्त्तव्य के रूप में प्राणी के सम्मुख आता है। पति–पत्नी, माता–पिता, भाई–बहन जिनका परिवार से नाता होता है, वह सभी कर्त्तव्यों के रीढ़ से बंधे होते हैं, जहाँ कर्तव्य है। वहाँ विरोध की स्थिति नहीं रह जाती है। कर्त्तव्य के आग्रह व्यक्ति के विचार और आग्रह को व्यक्ति को तनाव से ऊपर उठा देता है, जिसके कारण व्यक्ति सेवा का कार्य अपनाता है। इसी भावना का दूसरा नाम यज्ञ है। जिसमें व्यक्ति दूसरे के लिए अपने सुख, स्वार्थ समर्पण करके दूसरों की सहायता प्राप्त करने की युक्ति करता है। हिन्दू परिवार की व्यावहारिक स्थिति इसी भावना के बल पर टिकी है। इस प्रकार के सहयोगात्मक प्रेममयी वातावरण में परिवार के सभी सदस्य स्वयं अपने–अपने कर्त्तव्यों को अपनाकर उसका निर्वाह करते है। दूसरों की सम्पत्ति या दूसरों से छीन – झपट कर अपने लिए प्राप्त करने की बात वे अपने मन में नहीं लाते हैं। यही पारिवारिक जीवन का रस है और इसी स्थिति का नाम स्वर्ग का जीवन है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की सेवा एवं सहायता की बात करता है। यही आदर्श स्थिति स्वर्ग है। पारिवारिक जीवन की निरंतरता के लिए जिस आध्यात्मिक पोषण की आवश्यकता है वह रामायण के आदर्श चरित्रों से पूरी मात्रा में प्राप्त हो जाता है। हिन्दू समाज का जीवन मुख्य रूप से परंपरा की शक्ति से संचालित होता है जो प्राचीन है, वह नित्य नयी शक्ति से नवीन के साथ मिलकर उसका पथ प्रदर्शन करता है। नीति, धर्म, दर्शन, विचार ज्ञान, शक्ति पूर्वदान, कथा, वार्ता, व्रत, पर्व, उत्सव, संस्कार, दया आदि जितने भी जीवन में मूल्यवान तत्त्व है वह सभी परंपरा के रूप में हमें अनायास ही सुलभ हो जाते हैं। समाजशास्त्र के जनक अगस्त कोत ने भी अपने स्थिति शास्त्र के विवेचन में स्पष्ट किया है कि समाज में परंपरा ही निरंतरता को कायम रखती है। भारतीय परिवार को भी यही परंपरा निरंतर शक्ति प्रदान करती रहती है। हमारे जीवन के लिए जो कुछ भी घटित एवं सुन्दर है परिवार से उसकी रक्षा होती है। कलाओं की दृष्टि से, पर्व एवं उत्सवों की दृष्टि से, लोक साहित्य एवं संस्कृति की दृष्टि से, हिन्दू परिवार की क्षमता सर्वविदित है। भारतीय समाज में श्रेष्ठ परिवारों को महाकुल की संज्ञा दी गयी है। विदुर का मत है कि तप, दम, ब्रह्म, ज्ञान, यज्ञ, अन्नदान, शुभ विवाह और सम्यक आचार इन सात गुणों से साधारण परिवार भी महाकुल बन जाते हैं। उद्योग पर्व में लिखा है कि धर्म के सद्गुणों से परिवार का सिंचन करना यही परिवार के प्रत्येक सदस्य के मन की अभिलाषा रहती है। परिवार को महान बनाओ, श्रेष्ठ बनाओ, उसे रूप सम्पन्न करो, प्राण सम्पन्न करो, धर्म, कर्म और काम आदि पुरुषार्थों से सम्पन्न करो और अपने जीवन की शक्ति की नवीन जीवनधारा उसमें प्रवाहित करने की उत्साहमयी मानसिक स्थिति परिवार की उच्चता का कारण बनती है।

स्त्री और पुरुष का तंत्र विवाह के समय पति–पत्नी के रूप में एक में मिल जाता है। विवाह द्वारा स्त्री अपने स्व को पति के श्स्वश में मिला देती है। जन्म के समय पृथक–पृथक केन्द्र के जो दो वृत्त बनते हैं वे कालक्रम से एक दूसरे के पास आकर, परस्पर इस प्रकार आकर मिल जाते हैं जो परस्पर उनका केन्द्र एक हो जाता है।

परिवार मानव जाति में आत्म संरक्षण वंश, वर्धन और जातीय जीवन में सदस्य को बनाये रखने का प्रधान साधन है। मनुष्य पैदा होता है, बाल्यावस्था, युवा अवस्था और वृद्धा अवस्था के क्रम में समाप्त हो जाता है परंतु वंश परंपरा द्वारा उनका सन्तानक्रम अविच्छिन्न रूप से चलता रहता है। मृत्यु और अमरत्व दो विरोधी वस्तु है, परंतु परिवार द्वारा इन दोनों का समन्वय हुआ। मनुष्य भले ही मर जाये, परंतु परिवार और विवाह द्वारा मानव जाति निरंतर चला करती है।

अमेरिकी विचारक लूईस मार्गन, मैकलीमान, लेखेफन, लार्डएवरवरी, तथा विप्राल्ट आदि ने इसे स्वीकार किया है कि प्रारम्भ में समाज में कामा चार की दशा थी, इसके बाद बहु–पत्नी प्रथा का विकास हुआ और अंत में एक विवाह का नियम प्रचलित हुआ।[1] ट्रेलर फ्रेजर, डार्विन, वेस्टर्मार्क आदि ने सामाजिक आवश्यकता को परिवार के उद्भव का कारण बताया।[2] आत्म संरक्षण की वृद्धि तथा

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

पैतृक भावनाओं के अतिरिक्त कुछ दूसरे तत्त्व भी परिवार को स्थायी बनाने में सहायक सिद्ध होते है। स्त्री, पुरुष संसार के कष्टों का मुकाबला करने में अकेले अपने को असहाय पाते हैं, परंतु मिलकर परिवार का निर्माण कर सांसारिक कष्टों का अधिक सफलता और प्रसन्नता के साथ निवारण कर पाते हैं। स्त्री–पुरुष के कार्यों का बंटवारा होने के कारण मनुष्य परिवार की आवश्यकता का अनुभव तेजी से करता है, परिवार से न केवल प्रजाति की निरंतरता कायम रहती है। अपितु बच्चों का शिक्षण सामाजिक परंपराओं की रक्षा तथा व्यक्तित्व का निर्माण भी परिवार द्वारा होता है। एक नवजात शिशु का प्रारम्भिक विकास मां की गोद और परिवार में होता है। परिवार में जो आचार–व्यवहार, धार्मिक व्यवहार और परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है उसे वह सीखता है। परिवार में माता–पिता, भाई–बहन तथा अन्य संबंधियों के साथ उसे अपने कर्त्तव्य का बोध होता है। वह समाज में धार्मिक तथा नैतिक आदर्शों से परिचित होता है। परिवार का वातावरण मनुष्य के वातावरण में डाल देता है। सेवा एवं सहयोग, प्रेम और स्वार्थ त्याग के आदर्श गुणों का पहला पाठ बच्चा परिवार में ही पढ़ता है। अनेक मनोवैज्ञानिक मनुष्य की सभी परोपकारी प्रवृत्तियों का मूल कारण पारिवारिक जीवन को मानते हैं।[3] संयम, सदाचार और स्वार्थ, त्याग की शिक्षा व्यक्ति परिवार में ग्रहण करता है।4 परिवार के प्रयोजन के संबंध में धर्मशास्त्रियों का विचार है कि परिवार के तीन प्रमुख प्रयोजन थे– पहला पुत्र प्राप्ति, दूसरा धर्म कार्य, तीसरा रति। ऋग्वेद में लिखा है कि पाणिग्रहण के समय वर–वधू को कहता है कि मैं उत्तम संतान के लिए पाणिग्रहण करता हूं। धर्म के पालन में भी कहा गया है कि पत्नी के बिना धर्म कार्य पूरा नहीं हो सकता। याज्ञवल्क्य का विचार है कि धर्म कार्य के लिए एक पत्नी के मरने पर दूसरी स्त्री को पत्नी बनाया जा सकता है।

स्मृतिकारों ने परिवार की विकास का पाँच अवस्थाओं का उल्लेख किया हैः

1. पूर्व वैदिक युग जिसमें संयुक्त परिवार की प्रधानता थी।
2. 600 ई. पूर्व तक इस काल में संयुक्त परिवार का विघटन प्रारम्भ। पुत्र – पिता की सम्पत्ति से अपना भाग अलग करने लगे।
3. 600 ई. पूर्व से 600 ई. तक विघटन की प्रवृत्तियाँ अधिक हुई और पुत्रों को अधिकारों के बंटवारे का अधिकारी मान लिया गया।
4. 600 ई. से 1900 ई. तक की अवधि में टीकाकारों ने संयुक्त परिवार संबंधी प्रवृत्तियों का समर्थन किया। जीमुतवाहन ने पिता का असाधारण अधिकार देकर पिता के जीवनकाल में पारिवारिक सम्पत्ति का पुत्रों के बंटवारों का बंगाल में सर्वथा अंत कर दिया।
5. वर्तमान युग 1900 ई. से अब तक इस काल में विघटन की प्रवृत्तियाँ पुनः प्रबल होने लगी और स्वअर्जित सम्पत्ति के अधिकार को सुरक्षित कर दिया गया।

परिवार में स्त्रियों की स्थिति –पत्नी के भरण पोषण के लिए पति का यह कर्त्तव्य है कि वह पत्नी के प्रति प्रेम–पूर्वक और उत्तम व्यवहार करें । विदुर का विचार है कि पति को अपने पत्नी के साथ मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए और उसके प्रति उदारता दिखलाना चाहिए। पत्नी के साथ विवाद न करने का और दुर्वचन न कहने का भी प्रावधन है। शास्त्रकारों ने तो यहाँ तक लिखा है कि पत्नी के प्रति केवल उत्तम व्यवहार ही पर्याप्त नहीं अपितु उसकी पूजा भी होनी चाहिए। महाभारत में भी कहा गया है कि स्त्रियां महाभाग्यवती और पुण्यशील हैं। वह घर की शोभा है। भीष्म पुरुषों को शिक्षा देते हुए कहते हैं कि स्त्रियां मान योग्य है। अतः पुरुषों को उनका मान–सम्मान करना चाहिए। संतान का उत्पादन, उत्पन्न संतान का पालन और सांस्कारिक जीवन में पत्नीसंगिनी के रूप में होती है। अतः इसका सम्मान करना चाहिए जिससे सभी कार्य सिद्ध होगा। जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती हैं वही देवता रमण करते हैं जहाँ इनकी पूजा नहीं होती वहाँ धार्मिक क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं। स्त्रियों को लक्ष्मी कहा गया है। स्त्रियों के निरादर से लक्ष्मी रूठ जाती है और ऐश्वर्य की आकांक्षा रखने वाले को स्त्रियों की पूजा उत्तम आभूषणों और वस्त्रों तथा भोजन से करना चाहिए। मनु ने यह भी कहा है कि जहाँ स्त्रियाँ पूजित और सम्मानित होती हैं उससे सारा कुल चमक जाता है। ऐसी व्यवस्था इसलिए किया गया था कि स्त्री ही पत्नी के रूप में गृहस्थ आश्रम का मूल है। उसी की सहायता से पुरुष पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है और वहीं पुरुषों के पितरों को तारने वाली है। पत्नी के साथ यज्ञ करके पति स्वर्ग का अधिकारी बनता है और इस नश्वर संसार में दुःखपूर्ण बीहड़ यात्रा में पत्नी ही पुरुष का सहारा बनती है। इन्हीं धार्मिक ग्रन्थों में स्त्रियों की निन्दा भी की गयी है जैसे महाभारत में एक स्थान पर भीष्म कहते हैं कि नारी की सृष्टि ही पुरुष को पतित करने के लिए की गयी थी। वे आगे लिखते हैं कि स्त्रियों से बढ़कर कोई पापी नहीं, वे जलती हुई आग, माया, अस्तुरे की धार, विष और सर्प है। भर्तृहरि ने श्रृंगार स्तम्भ में यह घोषणा की कि इस संसार सागर में मनुष्य रूप में फंसाने का काँटा नारी जाति है। उन्होंने कहा है कि नारी सन्देहों का भंवर, धृष्टताओं का लोभ, दुस्साहसों का नाश, धोखों की अक्षय निधि, सैकड़ों कपटों वाली स्वर्ग द्वार का विघ्न, अविश्वासों की जन्मभूमि, नरकपुरी का द्वार, मायाओं की पेटी ऊपर से अमृत मय तथा भीतर से विषमय तथा व्यक्तियों का बंधनों का पाश है।

वाराहमिहिर ने उन लोगों की निन्दा की जो नारियों के लिए अच्छी विचारधारा नहीं रखते। उनका मानना था कि ऐसा कौन–सा दोष है जो पुरुष मैं नहीं है। मनु ने तो यहाँ तक कह डाला कि स्त्रियां गुणों में पुरुषों से अधिक है। माता और पत्नी नारी ही है मनुष्य का जन्म स्त्री से ही होता है। अतः जो उनकी निन्दा करते हैं उन्हें सुख नहीं मिल सकता। पति और पत्नी वैवाहिक प्रत्ययों का उल्लंघन करते हैं तो वे समान रूप से दोषी है। पुरुष पत्नी के मृत्यु के बाद दूसरा विवाह कर लेता है जबकि स्त्रियां पति की मृत्यु पर ही उसकी चिता के साथ अग्नि में प्रवेश करती है । प्रायः सभी समाजों में नारी शब्द में अच्छी और बुरी धारणाएं होती है। मध्य युग के संस्कृत साहित्य में स्त्रियों को पर पुरुषों को छलने, बहलाने, धोखा देने, अत्यधिक कुटिल होने का अत्यधिक दोषारोपण है। पंचतंत्र के मत में झूठ बोलना, बिना सोचे काम करना, झूठ का व्यवहार, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रताएं और निर्दयता स्त्रियों के स्वाभाविक गुण है। उनका स्वभाव समुद्र की तरंगों के समान चंचल और प्रेम संध्याकाल में बादलों के रंग के समान क्षणिक होता है।

प्राचीनकाल में स्त्रियों की स्थिति हीन होने का एक बड़ा कारण आजीवन इनके परतंत्र रहने का सर्वमान्य होना था। धर्म सूत्रों के समय से प्रायः प्रत्येक साहित्यकार ने इसका समर्थन किया है। वशिष्ठ ने सामान्य रूप से नारी को स्वतंत्रता न देने की घोषणा करते हुए बचपन में पिता, यौवन में पति और बुढ़ापे में पुत्रों को उसका संरक्षक बताया। वशिष्ठ की यह व्यवस्था इन्हीं शब्दों में वौधायन, विष्णु, मनु, व्यास और नारद ने भी दोहराया है। एक आधुनिक स्त्री रमाबाई ने इन व्यवस्थाओं पर कटु व्यंग्य करते हुए लिखा है कि हिन्दू स्त्री केवल एक ही स्थान नरक में स्वाधीन रह सकती है।[5]

साहित्यकारों ने सम्भवतः तीन कारणों से नारी को स्वतंत्र न रखने की सलाह दी थी। पहला कारण – नारी के अबला होने के कारण कुदृष्टि का शिकार होने पर आत्मरक्षा में असमर्थ थी। दूसरा कारण – स्त्री का आर्थिक परावलम्बन और स्वयं जीविकापार्जन करने की अक्षमता थी और तीसरा कारण–पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों पर सतीत्व का बंधन अधिक कठोर था ।

धर्मशास्त्र में पत्नी के कर्त्तव्य का विस्तार से वर्णन है। इसका वर्णन मनुस्मृति याज्ञवल्क्य के योग सूत्र और विष्णु धर्मसूत्र में भी मिलता है। पति सेवा और पतिव्रता को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। मनु के अनुसार–पत्नी में चार बातें होनी चाहिए। पहला– वह सदैव हंसमुख रहे, दूसरा–गृह कार्यों में दक्ष हो, तीसरा– घर की सभी चीजों को साफ–सुथरी रखे, चौथा– अपव्ययी न हो। याज्ञवल्क्य ने इसके अतिरिक्त पति का प्रिय कार्य करना, सास–ससुर की चरण वंदना, उत्तम आचरण और संयम पत्नी के गुण बतायें है। मनु ने स्त्रियों के बिगड़ने के छरू कारण बतायें है– सुरापान, बुरे व्यक्तियों का संग, पति से दूर रहना, विभिन्न स्थानों में घूमना, दिन में सोना और दूसरे के घरों में रहना । हिन्दू परिवार में पत्नी सेवा का सर्वोच्च आचरण सीता ने रखा है। चौदह वर्ष के वनवास होने की आज्ञा पर श्रीराम की यह इच्छा थी कि सीता वन जीवन के भयंकर कष्टों से बची रहे किन्तु वह पति सेवा के लिए भीषण से भीषण कष्ट सहने के लिए तत्पर है। पति के प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव न उत्पन्न हो द्रौपदी ने वन में पतियों के साथ घोर कष्ट सहे परंतु पति व्रत की मर्यादा नहीं छोडी। हरिश्चन्द्र की पत्नी तारामती ने भी अपने पति द्वारा बेचे जाने पर संकोच नहीं किया । इन्द्र वैदिक साहित्य में छल कपट के लिए प्रसिद्ध है किंतु उनकी पत्नी सची ने सतीत्व का उज्ज्वल स्थान स्थापित किया है। महाभारत में कहा गया है कि पृथ्वी के सभी तीर्थ पतियों के चरण में है तथा सभी देवताओं का तेज सतियों में है। जिनके चरणों की धूल से पृथ्वी पवित्र हो जाती है जिसकी आँसुओं से रावण जैसा बलवान भी नष्ट हो जाता है।

महाभारत में ऐसा अनेक ओजस्वी वर्णन है जो पति के अनुचित कार्य करने पर उसे शिक्षा देने तथा ठीक रास्ता दिखाने का कार्य करती है। माता के महत्त्व पर महाभारत में कहा गया है कि माता देहदात्री होने के साथ–साथ ज्ञानदात्री भी है। संतान पर बचपन में माता के अच्छे या बुरे प्रभाव अंकित हो जाते है। माता ही बच्चों की सबसे बड़ी और सबसे पहली गुरु है।

वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि सीता कहती हैं कि राघव यदि आप दुर्गम वन को जाते हैं तो मैं आपके आगे–आगे काँटों और कुश – घास को कुचलती हुई चलूंगी। ऊंचे महल तथा विमान में बैठकर आकाश में विहार करने की अपेक्षा सब अवस्थाओं में पति की सेवा ही श्रेष्ठ है । यदि स्वर्ग में भी वास करना मिले तो मैं उसे आपके बिना पसंद नहीं करूंगी। आपके साथ जो वस्तु है वह मेरे लिए स्वर्ग है आपके बिना जो कुछ है वही नरक है । अंधेरे में छाया, व्यक्ति का साथ छोड़ देती है किंतु विपत्ति में सीता जी ने राम का साथ नहीं छोड़ा। याज्ञवल्क्य का मत है कि पत्नी का परम धर्म है कि वह पति के वचन का पालन करे। महाभारत में ऐसे अनेक उदाहरण है जिनमें पत्नियों द्वारा पतियों की अनुचित इच्छाओं को पूरा करने का वर्णन है। मारकण्डेय पुराण में एक उदाहरण है कि एक कौशिक, ब्राह्मण जो कोढ़ी और लंगड़े थे उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए उनकी पत्नी उनको एक वेश्या के घर ले जाती थी। ये सभी कथाएं पति व्रत की महिमा का बखान करती है।

गंधारी को जब पता चला कि धृतराष्ट्र जिनसे विवाह हो रहा है वह अंधे है तो गंधारी ने अपने आँखों पर पट्टी बांध लिया जिससे उसके अंदर अभिमान न हो। अथर्ववेद में पुत्र को यह आदेश दिया गया है कि माता के अनुकूल बनकर रहे। नेपोलियन भी कहा करता था कि बालक का भावी रूप माता की योग्यता पर निर्भर करता है। तैत्रीय उपनिषद ने आचार्य शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त ब्रह्मचारी को उपदेश देता था कि माता की देवता की तरह पूजा करो। धर्मसूत्रों में कहा गया है कि माता शिक्षक है। गौतमधर्म सूत्र में कहा गया है कि कुछ लोगों के मत के अनुसार माता श्रेष्ठ गुरु है। माता के महत्त्व को बताते हुए धर्मसूत्रों में व्यवस्था है कि माता की सेवा – सुश्रूषा और भरण–पोषण पुत्रा का परम कर्त्तव्य है। महाभारत में भी माता के विषय में विस्तृत चर्चा है। भीष्म के अनुसार माता–पिता और गुरु की पूजा करना ही सर्वोत्तम धर्म है उनका सम्मान करने वाले सभी लोगों में आदर पाते हैं और उनका कार्य निष्फल नहीं हो जाता है और परलोक भी नहीं बिगड़ता है। कहा गया है कि माता जैसी शीतल छाया, आर्ष स्थान, रक्षा स्थान या प्रियवस्तु नहीं है वह संतान को जन्म देने से जननी, उसके अंगों के पुष्टिवर्धन से अम्बा और वीर्य संतानों को पैदा करने से वीरशू है। माता के रहने पर ही सनाथ और न रहने पर अनाथ हो जाते हैं। कालिदास ने भी नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व में मानी है। उन्होंने रघुवंश में मातृत्व का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। पुराणों में भी माता को आदिशक्ति मानकर जगदम्बा जगत जननी आदि अनेक नामों से उसकी पूजा की गयी। वंश विस्तार की दृष्टि से पुत्र की अपेक्षा अधिक महत्त्व होते हुए भी हिन्दू परिवार में कन्या हमेशा उपेक्षा का शिकार और विषाद का कारण रही हैं कुछ वैदिक काल के बाद ऐसे समय भी रहे हैं जब कन्यावध दारूण कृत्य कुछ जातियों में प्रचलित रहा है। ऐतरेय ब्राह्मण में यहाँ तक लिख दिया गया कि वह जन्म के समय अपने सम्बन्धियों को दुःख देती हैं तथा विवाह के समय बहुत धन ले जाती है। यौवन में अनेक दोषों तथा कुल को कलंकित कर सकती है। इस प्रकार लड़की माता–पिता को विदीर्ण करने वाली होती है। ऋग्वेद में यह भी बार–बार वीर पुत्रों की प्रशंसा की गयी है किंतु पुत्री की अर्चना कहीं नहीं है। संस्कारों में उपनयन संस्कार पुरुष संतान के लिए ही किया जाता रहा है। वेर्स्टमार्क, जमीर, डेलबुईक और बेबरराज का मत है कि वैदिक युग में बालिका वध प्रचलित था ।[6] वैदिक युग में भी हिन्दू परिवार में कन्या उपेक्षा का पात्र रही। हिन्दू परिवार में कन्या की उपेक्षा और दुर्दशा के कारण तथा उससे उत्पन्न होने वाली अनेक प्रकार की चिन्ताएं हैं। पहली चिन्ता उसके लिए उपयुक्त वर ढूंढने तथा दूसरी उसके लिए दहेज तथा तीसरी उसके लिए जिसने अपने कुल को अपकृत की और चौथा पति के घर सुखी रहने की। मध्य युग और मुगलकाल में राजपूतों तथा हिन्दुओं के अनेक वर्गों में दहेज की कुप्रथा होने से बालिका वध की दारूण कुप्रथा को प्रोत्साहन मिला। 19वीं सदी में पंजाब और राजस्थान में भी इस कुप्रथा का प्रचार हो गया। 1870 ई. में बालिका वध को रोकने के लिए एक कानून बनायेगा फिर भी इस कुप्रथा का अंत नहीं हुआ। जनगणना विज्ञप्तियों से पता चलता है कि आज भी भारत के कुछ प्रान्तों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की कम संख्या इसी कुप्रथा के कारण है। शास्त्रकारों ने कन्या को पुत्र तुल्य माना है। मनु के अनुसार जिस प्रकार पुत्र अपना ही दूसरा रूप होता है उसी प्रकार पुत्री भी पुत्र के बराबर होती है। नारद और बृहस्पति भी पुत्री को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बताते हैं। हिन्दू समाज में कन्या का दर्शन शुभ माना गया है और मांगलिक अवसरों पर उसकी उपस्थिति आवश्यक बतायी गयी है। रामचन्द्र के राज्याभिषेक के समय भी बार–बार कन्याओं का वर्णन किया गया है।[7] हिन्दू परिवार भाई–बहनों का निःस्वार्थ प्रेम, भइया दूज के त्यौहारों से प्रतिवर्ष सिद्ध होता है। बहादुर शाह ने जब चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसे जीत लिया तो कर्णवती ने इसके उद्धार के लिए हुमायूं को राखी भेजी। इससे हुमायूं बड़ा प्रसन्न हुआ और बंगला विजय को अधूरा छोड़कर अपने धर्म – बहन को विपत्ति से छुड़ाने के लिए चित्तौड़ आया और वहाँ से बहादुर शाह को पराजित कर भगाया ।[8] भाई–बहन के अगाध प्रेम का लोक–कथाओं और ग्रामीण गीतों में सुंदर चित्रण मिलता है।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा में मूलभूत परिवर्तन हुआ है। अब परिवार में पुत्र और पुत्री में भेद कम किया जाता शिक्षा की व्यवस्था दोनों के लिए समान रूप से सुलभ है। आर्थिक स्वतंत्रता के लिए पुत्र और पुत्री दोनों को समान रूप से प्रोत्साहित किया जाता है। सरकारी प्रयास बढ़े हैं जिससे महिलाओं को आगे बढ़ने का अवसर मिल रहा है। गरीब परिवार में बालिकाओं की शिक्षा दीक्षा तथा उचित विवाह के लिए सरकारी अनुदान की व्यवस्था है। उन क्षेत्रों में भी महिलाओं का पदार्पण हो रहा है जो क्षेत्र पहले उनके लिए निषेध थे। पंचायतीराज व्यवस्था के आने से महिलाओं की प्रस्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

प्रस्तुत अनसुंधान प्रपत्र मेरे शोध कार्य परिवार में बदलती परिस्थिति महिलाओं से संबंधित है। जैसा कि पिछले पन्नों में अंकित है भारतीय समाज में परिवार की अपनी विशेष महत्ता रही है। परिवार ही व्यक्ति को सामाजिक मनुष्य बनाने के लिए सामाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ करता है जिसमें स्त्रियों की भूमिका विशेष महत्त्व रखती है। अन्ना, विमला, कमला आदि बच्चों का उदाहरण सिद्ध करता है कि यदि जन्म के समय ही बच्चे को परिवार से अलग कर दिया जाये और उन्हें एकान्त में रख दिया जाये तो उनका समाजीकरण नहीं हो सकता। असमाजीकृत प्रणाली जानवरों की भांति हो होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में गया जिला के चार विकास खंड– मानपुर, वजीरगंज, बोध गया तथा बेलागंज से 200 उत्तरदाताओं को लिया गया है। उत्तरदाताओं का मानना है कि स्वतंत्रता के बाद भारत में स्त्रियों की दशा में सकारात्मक सुधार हुआ है। परिवार में अब बेटे–बेटी में बहुत कम भेदभाव किया जाता है। पहले यह भेद बहुत अधिक था। कहीं–कहीं तो जन्म के समय ही कन्याओं की हत्या कर दी जाती थी । यह पूछे जाने पर कि क्या अभी भी परिवार में पति पत्नी के साथ मारपीट या गाली–गलौज करते हैं और घरेलू हिंसा को जन्म देते हैं? दूसरे उत्तर में अधिकांश उत्तरदाताओं का उत्तर था कि घरेलू हिंसा अधिक अंश तक कम हुई है। उत्तरदाताओं का यह मानना था कि लोग घरेलू हिंसा निवारण अधिनियम से परिचित है। घरेलू हिंसा में कमी का एक कारण शिक्षा का प्रसार है। अब प्रत्येक गाँव में प्राथमिक विद्यालय खुल जाने के कारण बालक बालिकाएं पढ़ने–लिखने, स्कूल जा रहे हैं। माता–पिता भी चाहते हैं कि उनके बच्चे शिक्षा ग्रहण करें तथा समाज में उच्च परिस्थिति प्राप्त करें। सरकार का प्रयास शिक्षा के प्रसार में सराहनीय है । प्राथमिक विद्यालयों में दोपहर का भोजन भी बच्चों को दिया जाता है । इसके कारण अब गरीब घरों के बच्चे भी स्कूल जाने लगे हैं। स्कूल का ड्रेस, पुस्तक/ कापी आदि निःशुल्क स्कूल से बच्चों को दिया जाता है।

यह पूछे जाने पर कि परिवार में निर्णय लेने का अधिकार पुरुष को है कि स्त्री को इसके उत्तर में उत्तरदाताओं का कहना था कि दोनों मिलजुल कर परिवारिक निर्णय लेते हैं। यह स्थिति यह सिद्ध करती है कि परिवार में स्त्रियों की महत्ता बढ़ी है। पितृसत्तात्मक परिवारों में पहले सभी निर्णय पुरुष किया करते थे।

यह पूछे जाने पर कि पारिवारिक संबंधों में मधुरता का प्रमुख कारण क्या है? इसके उत्तर में उत्तरदाताओं ने बताया कि हरित क्रांति के कारण खाद्यान्नों में वृद्धि हुई है । उत्पादन बढ़ा है। लोग आर्थिक आधार पर सम्पन्न हुए है। यह एक प्रमुख कारण है कि पारिवारिक कलह कम हुआ है तथा लोगों के बीच आपसी संबंध मधुर हुए हैं।

परिवार में वैवाहिक संबंध स्थापित करने की प्रथा परम्परागत ही है अभी भी लोग अपने जाति में विवाह करना श्रेयस्कर मानते हैं। जहाँ कहीं अंतर्जातीय विवाह कभी–कभी सुनने को मिला है तो लोग इसका विरोध करते है। वैवाहिक संस्था अभी भी परंपरा के अधीन है।

पंचायतीराज व्यवस्था के प्रचलन के कारण अब महिलाएं भी प्रधान पद पर आसीन हो रही हैं। महिलाओं में राजनैतिक चेतना बढ़ रही है। महिलाएं समूह बनाकर घरेलू उद्योग धंधों को कर रही है। इससे उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो रही है। बकरी – भेड़, पालन, कुकुक्ट पालन, गाय–भैंस रखकर दूध का कारोबार, स्वेटर बनाना, रस्सी बनाना, मिट्टी का बर्तन बनाना, सब्जी पैदा करके उसे बाजार में बेचना आदि कार्य ग्रामीण महिलाएं कर रही हैं। उनके इन कार्यों में पुरुष भी उनका सहयोग करते हैं।

ग्रामीण महिलाएं अभी भी परंपरागत रस्म साड़ी, ब्लाउज पहनती हैं। छोटी–छोटी लड़कियां सलवार कमीज में देखने को मिलती है। कृषि कार्य में महिलाएं पुरुषों के साथ–साथ काम पहले की भांति करती हैं सारांश रूप कहा जा सकता है कि महिलाओं की वर्तमान प्रस्थिति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संतोषजनक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. स्पेंसर, समाजशास्त्र, खंड–3, अध्याय–37.
2. वेर्स्टमार्क, हिस्ट्री आफ मैरेज, पृ. 13.
3. एलउड़, सोसियोलाजी इन इट्स साइकोलाजिकल एस्पेक्ट पृ. 13.
4. फ्लूगल, एनिलिटिक स्टडी आफ फेमिली, पृ. 4.
5. रमाबाई, दिहाईकास्ट हिन्दू विमेन, पृ. 41.
6. वेर्स्टमार्क, ओरिजीन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ मारल आइडियाज, पृ.393.
7. पी.वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास भाग – 2, पृ. 511.
8. टाड, एनेल्स एण्ड एक्टीविटीज आफ राजस्थान, पृ. – 326.

*****